हिंदी के प्रथम सेनानी : महर्षि दयानंद सरस्वती

(जिनका आज (12 फरवरी को) जन्मदिन है)

समय के प्रवाह में आर्यसमाज के अवदान को आज लोग भूल चुके हैं किन्तु एक समय में हिन्दू समाज को कुरीतियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और कुसंस्कारों से मुक्त करने में आर्यसमाज की अप्रतिम भूमिका थी। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती आधुनिक भारत के महान चिन्तक, समाज सुधारक और देशभक्त थे। किन्तु मैं यहाँ उन्हें हिन्दी के प्रथम प्रतिष्ठापक के रूप में स्मरण कर रहा हूँ।

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म 12 फरवरी 1824 को काठियावाड़ (गुजरात) क्षेत्र के 'टंकारा' नामक स्थान में हुआ था। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था। वे समृद्ध परिवार के थे। उनका बचपन बड़े आराम से बीता। आगे चलकर पंडित बनने की लालसा में वे वेदादि ग्रंथों के अध्ययन में लग गए। इसी क्रम में सन् 1872 ई. में स्वामी जी कलकत्ता आए और यहां देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा केशवचंद्र सेन से उनकी मुलाकात हुई। यहाँ उनका बड़ा सम्मान हुआ। यद्यपि ब्राह्मसमाजियों पर उनका अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु कलकत्ते में ही केशवचंद्र सेन ने उन्हें सलाह दी कि यदि वे संस्कृत छोड़ कर आर्यभाषा (हिन्दी) में बोलना आरम्भ करें तो उसका व्यापक प्रभाव पूरे भारत पर और सामान्य जनता पर भी पड़ेगा। वे धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे किन्तु उन्होंने केशवचंद्र सेन की सलाह मान ली और उसी दिन से उनके व्याख्यानों की भाषा आर्यभाषा (हिन्दी) हो गयी। कलकत्ते से मुम्बई लौटने के बाद उन्होंने वहीं 10 अप्रैल 1875 ई. को 'आर्य समाज' की स्थापना की। मुंबई में उनके साथ प्रार्थना समाज वालों ने भी विचार-विमर्श किया। किन्तु यह समाज तो ब्राह्म समाज का ही मुंबई संस्करण था। अतएव स्वामी जी से इस समाज के लोग भी एकमत नहीं हो सके।

दयानंद सरस्वती कोई हिन्दी के प्रचारक नहीं थे। वे सही अर्थों में समाज सुधारक और देशभक्त थे। आर्यसमाज के प्रचार के लिए हिन्दी का चयन ऐसी महान घटना थी जिसका हिन्दी के भविष्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। हिन्दी को उन्होंने 'आर्यभाषा' नाम दिया। हिन्दी की राष्ट्रव्यापी स्वीकृति के लिए स्वामी जी द्वारा यह नाम देना ही काफी था। हाँ, आर्यसमाज से जुड़ने के कारण हिन्दी में संस्कृतनिष्ठता बढ़ी और उसके लोकधर्मी स्वरूप पर किंचित प्रतिकूल प्रभाव जरूर पड़ा।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने बताया कि आर्यसमाज के नियम और सिद्धांत प्राणिमात्र के कल्याण के लिए है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने वेदों की सत्ता को सर्वोपरि माना

और वेदों के भाष्य किए। उन्होंने ही सबसे पहले 1876 ई. में 'स्वराज' का नारा दिया जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढ़ाया।

आर्यसमाज के प्रचार के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा किया और जहां-जहां वे गये प्राचीन परंपरा के पंडित और विद्वान उनसे हार मानते गये। उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रन्थों का भी भली-भांति अध्ययन-मनन किया था। इसीलिए अपनें शिष्यों के साथ मिल कर उन्होंने तीन-तीन मोर्चों पर संघर्ष किया। दो मोर्चे तो ईसाइयत और इस्लाम के थे किंतु तीसरा मोर्चा सनातनी हिंदुओं का था। दयानन्द सरस्वती ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलायी, उसका बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। अपने महान ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने सभी मतों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया है। इसे उन्होंने हिन्दी में लिखा। शीघ्र ही आर्यसमाज की शाखाएं देश भर में फैल गईं। देश के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय नवजागरण में आर्यसमाज की बहुत बड़ी भूमिका रही है। हिन्दू समाज को इससे नई चेतना मिली और अनेक आडंबरों से छुटकारा मिला। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उन्होंने जातिवाद, छुआछूत, सती प्रथा, बाल-विवाह, नरबलि, धार्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास आदि का जमकर विरोध किया तथा विधवा-विवाह, धार्मिक उदारता और आपसी भाईचारे को प्रोत्साहित किया। वे कहा करते थे, "मेरी आँख तो वह दिन को देखने को तरस रही है जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा बोलने और समझने लग जाएंगे।"

स्वामी दयानंद का प्रभाव उस समय के देश के अनेक महापुरुषों पर भी पड़ा जिनमें मादाम भीकाजी कामा, भगत सिंह, पंडित लेखराम आर्य, स्वामी श्रद्धानंद, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा, रामप्रसाद बिस्मिल, महादेव गोविंद रानाडे, महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय आदि प्रमुख हैं। लाला हंसराज नें 1886 ई. में लाहौर में दयानंद ऐंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की तथा स्वामी श्रद्धानंद ने 1901 ई. में हरिद्वार के निकट गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। बाद में तो देश के कोने कोने में डी.ए.वी. (दयानंद ऐंग्लो वैदिक) कॉलेज और स्कूल खुले जिसका व्यापक प्रभाव हिन्दी के प्रचार प्रसार पर पड़ा।

कहा जाता है कि 1857 की क्रान्ति में भी स्वामी जी की भूमिका थी। क्रान्ति के पहले हरिद्वार में एक पहाड़ी पर स्वामी जी ने अपना डेरा जमाया था और वहीं उन्होंने पाँच ऐसे व्यक्तियों से मुलाकात की थी जो आगे चलकर सन् 1857 की क्रान्ति के कर्णधार बने। ये पाँच व्यक्ति थे नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, बाला साहब, तात्या टोपे तथा बाबू कुँवर सिंह। 1857 की क्रान्ति के दो वर्ष बाद स्वामी जी ने स्वामी विरजानंद को अपना गुरु बनाया और उनसे दीक्षा ली। स्वामी विरजानंद के आश्रम में रहकर उन्होंने वेदों का गहरा अध्ययन किया और उसके बाद अपने गुरु के निर्देशानुसार वैदिक ज्ञान के प्रचार –प्रसार के लिए जुट गए।

स्वामी दयानंद सरस्वती धार्मिक संकीर्णता और पाखंड के विरोधी थे। स्वाभाविक है, उनके दुश्मन भी बहुत थे। सन् 1883 में किसी ने दूध में कांच पीसकर उन्हें पिला दिया जिससे इस महापुरुष का निधन हो गया। उस समय वे जोधपुर में जोधपुर नरेश महाराजा यशवंत सिंह के आमंत्रण पर उनके अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

'सत्यार्थ प्रकाश' के अलावा स्वामी दयानंद सरस्वती की अन्य पुस्तकों में 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका', 'ऋग्वेद भाष्य', 'संस्कारविधि', 'पंचमहायज्ञविधि', 'आर्याभिविनय', 'भ्रान्तिनिवारण', 'अष्टाध्यायी भाष्य', 'वेदांग प्रकाश' आदि प्रमुख है।

(लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर और हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं।

साभार- वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई
vaishwikhindisammelan@gmail.com